पहले चारित्र का भेद है। चारित्र किसको होता है ? जिसे आत्मा, राग के विकल्प से भिन्न — चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह राग है; वह धर्म नहीं है —

उससे भिन्न अपना आत्मा आनन्दस्वरूप-ज्ञायकस्वरूप परमब्रह्म आनन्द, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो शुद्ध आत्मा परमानन्द देखा, ऐसा जो अनुभव करे, उसका नाम सम्यग्दृष्टि धर्मी — पहली श्रेणी का कहा जाता है। फिर स्वरूप में यह अनुभव होने के बाद अन्दर का रस-आनन्द का रस चढ़ा, उसमें लवलीन होता है, उसे चारित्रदशा-वीतरागदशा उत्पन्न होती है। उसके दश प्रकार हैं। सूक्ष्म बात है, क्या हो? छठवाँ बोल है, आज छठवाँ दिन है न? 'उत्तम संयम'। उत्तम संयम — ऐसा क्यों कहा? कि अपना आनन्दस्वरूप भगवान के अनुभवपूर्वक सम् - सम् सम्यक् अनुभवपूर्वक, यम - अन्तरस्वरूप में विशेष रमणता / लीनता को संयम कहते हैं। आहाहा! उसमें यह छठवाँ बोल —

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।
तणछेदं पि ण इच्छदि संजमधम्मो हवे तस्स॥३९९॥

आहाहा! यह सब मुनि की मुख्यता से बात है न? दशलक्षण पर्व मुनि की मुख्यता से है। चारित्र है, (वह) मोक्ष का कारण है। वह चारित्र कोई यह क्रियाकाण्ड — नग्न हो जाना या पंच महाव्रत पालना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! चारित्र तो अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर घुस जाना, गुफा में प्रवेश हो जाना — ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हो जाना... आहाहा! उसका नाम संयम और चारित्र कहते हैं। संयम का भेद नहीं आया? जीवों की रक्षा में तत्पर — यह निमित्त से कथन है। मुनि को जीव की रक्षा का हेतु नहीं है। समझ में आया? परजीव को दुःख न हो — ऐसे अप्रमादभाव से रहकर कोई विकल्प आया (कि) पर को दुःख न देना, वह जीव की दया सहज हो जाती है। जीव की रक्षा करना, यह तो आत्मा कर नहीं सकता। भाषा (में) तो निमित्त से कथन है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में है (सातवें) अधिकार में, संवर (तत्त्व सम्बन्धी भूल में) मोक्षमार्गप्रकाशक (में है कि) समिति में जीव की रक्षा का हेतु नहीं है। आहाहा! देखकर चलना, चलना उसमें जीव की रक्षा का प्रयोजन नहीं है क्योंकि आत्मा, जीव की रक्षा कर ही नहीं सकता। आहाहा! तब तीव्र राग की आसक्ति छोड़कर, गमनागमन में ध्यान रखना, सावधानी रखना, उसका नाम जीव की रक्षा की — ऐसा कहा (जाता है)। जीव की दया पाली... कौन पाले पर की (दया)? आहाहा! यहाँ यह भाषा ऐसी ली है। मोक्षमार्ग

(प्रकाशक) में इससे इनकार किया है, संवर (तत्त्वसम्बन्धी भूल प्रकरण में सातवें) अधिकार में कि पर की रक्षा के हेतु मुनि आत्मज्ञानी-ध्यानी चलते हैं तो जीव की रक्षा का प्रयोजन समिति में नहीं है। ईर्यासमिति में यह प्रयोजन नहीं है। आहाहा!

श्रोता : मुनि में बचाने की योग्यता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बचाये? अपने में तीव्रराग न होने देना और आनन्द में रहना, उसका नाम समिति है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग प्रकार का है, भाई! आहाहा! युगलजी! यह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है, संवर... (सातवें) अधिकार - पाँच समिति, तीन गुप्ति... संवर कहा न! नहीं तो कोई ऐसा मान ले कि जीव की रक्षा करने में ध्यान रखना... यह समिति है ही नहीं।

श्रोता : ईर्यासमिति में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आता है न? पता है न, है यहाँ तो, जीव रक्षण शब्द पड़ा है, यह तो व्यवहार का कथन है परन्तु पर जीव को जरा भी दुःख न देना, पीड़ा न देना — ऐसा अप्रमादभाव उसका नाम यहाँ संयम कहा गया है। आहाहा! बहुत कठिन!

पुनश्च, गमनागमन आदि सब कार्यों में.... मुनि किसे कहें बापू! मुनिपना तो अभी... आहाहा! जिसे आत्मज्ञान-आत्मा का अनुभव हुआ हो और फिर आत्मा में लीनता हो गयी हो और जिसकी दशा बाह्य में नग्न हो जाये। आहाहा!

श्रोता : वस्त्र छोड़ना पड़ता है या नहीं, वस्त्र तो छोड़ना पड़ता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र कौन छोड़े? छूट जाते हैं। आहाहा! वस्त्र तो जड़ हैं, उन्हें नीचे उतारना, वह आत्मा की क्रिया नहीं है, आत्मा कर नहीं सकता। सूक्ष्म बात है भाई! वीतरागमार्ग अभी बहुत फेरफार कर डाला है। कहा था न एक बार? चाँदमलजी के साथ चर्चा हुई, वे कहते थे — वस्त्र तो उतारते हैं न? कपड़े क्या, वे तो जड़ हैं। जड़ का उतारना, वह क्रिया आत्मा कर सकता है? और वस्त्र ओढ़ना यह आत्मा कर सकता है? वह तो जड़ की क्रिया है। क्या? आहाहा!

यहाँ कहा — **गमनागमन कार्य में तृण का छेदमात्र न चाहता...** आहाहा! एक

तिनका-तृण, उसके दो टुकड़े हों, वह भी जीव की इच्छा नहीं है। आहाहा! क्योंकि तृण का टुकड़ा हो, वह आत्मा नहीं कर सकता। एक तिनका है न तिनका? उसके दो टुकड़े आत्मा नहीं कर सकता, वह तो जड़ की क्रिया है।

श्रोता : तब तो रोटी के टुकड़े भी नहीं करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी के टुकड़े भी नहीं कर सकता। आहाहा!

श्रोता : रोटी के टुकड़े नहीं करे तो चबाये किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : चबाये कौन? दाँत इसके (आत्मा के) नहीं हैं, दाँत हिलते हैं, वह आत्मा हिलाता ही नहीं, वह तो जड़ के कारण हिलता है, आहा! बापू! मार्ग अलग, भाई! अरेरे! समझ में आया? तृण का छेद भी न करे।

श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं एक बार कि एक तिनके के दो टुकड़े करने की हमारी शक्ति नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्र! एक तिनके के दो टुकड़े (करना), वह हमारी ताकत नहीं है, क्योंकि वे टुकड़े होना, वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा!

श्रोता : पूरी दुनिया वस्त्र पहनती है और उतारती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उतारता है और कौन पहनता है? राग करता है कि मैं कपड़े पहनूँ और कपड़े उतारूँ। राग है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? यह टोपी मैं पहनता हूँ, ओढ़ता हूँ... मूर्खता है। टोपी जड़ के रजकण हैं, वह मैं पहनता हूँ, ओढ़ता हूँ — यह जड़ की क्रिया आत्मा कर सकता है?

श्रोता : पूरी दुनिया से उल्टा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया से उल्टा है। वीतरागमार्ग — परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का मार्ग पूरी दुनिया से विरुद्ध है, वह यहाँ कहते हैं। तृण का भी छेद न करे उस मुनि को संयम होता है। लो, इतनी थोड़ी बात ली है। (अब) २१ कलश, २१ में है न?

कलश - २१

अब, इसी अर्थ का सूचक कलशरूप काव्य कहते हैं —

(मालिनी)

कथमपि हि लभंते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा
प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः संततं स्युस्त एव॥२१॥

श्लोकार्थ : [**ये**] जो पुरुष [**स्वतः वा अन्यतः वा**] अपने ही अथवा पर के उपदेश से [**कथम् अपि हि**] किसी भी प्रकार से [**भेदविज्ञानमूलाम्**] भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है ऐसी अपने आत्मा की [**अचलितम्**] अविचल [**अनुभूतिम्**] अनुभूति को [**लभन्ते**] प्राप्त करते हैं, [**ते एव**] वे ही पुरुष [**मुकुरवत्**] दर्पण की भाँति [**प्रतिफलन-निमग्न-अनन्त-भाव-स्वभावैः**] अपने में प्रतिबिम्बित हुए अनन्त भावों के स्वभावों से [**सन्ततं**] निरन्तर [**अविकाराः**] विकाररहित [**स्युः**] होते हैं — ज्ञान में जो ज्ञेयों के आकार प्रतिभासित होते हैं उनसे रागादि विकार को प्राप्त नहीं होते॥२१॥

कलश - २१ पर प्रवचन

कथमपि हि लभंते भेदविज्ञानमूला-
मचलितमनुभूतिं ये स्वतो वान्यतो वा
प्रतिफलननिमग्नानंतभावस्वभावै-
र्मुकुरवदविकाराः संततं स्युस्त एव॥२१॥

जो पुरुष अपने ही अथवा पर के उपदेश से किसी भी प्रकार से भेदविज्ञान जिसका मूल.... आहाहा! मैं तो आनन्दस्वरूप आत्मा.... यह शुभाशुभविकल्प जो राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प जो राग, उससे भी मैं तो भिन्न हूँ। आहाहा! समझ में आया? **भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है — ऐसी अपने आत्मा की**

अविचल अनुभूति.... आहाहा! यह आत्मा पूर्णानन्द अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु है। उसको (वह) शरीर-वाणी से तो भिन्न है परन्तु अन्दर में शुभराग होता है, पाप का राग अशुभराग (होता है), उससे तो भिन्न है, परन्तु पुण्य का राग दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यात्रा, यह शुभराग है, उससे भी आत्मा भिन्न है। आहाहा! ऐसा **भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है....** अनुभूति की उत्पत्ति का कारण क्या? अनुभूति का अर्थ? मैं शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसका अनुभव सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में होना। आहाहा! मैं शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है, उसका अनुभव, अनुभूति-आनन्द का स्वाद आना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आना, उसका मुख्य हेतु कौन? **भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्तिकारण है....** यह विकल्प जो दया, दान का विकल्प; हिंसा, झूठ, चोरी, भोग-विषयवासना, यह तो अकेला पाप-राग है। आहाहा! परन्तु पुण्य-राग के विकल्प से भी, भेदविज्ञान जिसका मूल उत्पत्ति अनुभूति का (कारण है)। आत्मा का अनुभव — सम्यग्दर्शन-ज्ञान की उत्पत्ति... आहाहा! जिसका भेदविज्ञान मूल उत्पत्तिकारण है। राग से भिन्न करना, यह अनुभूति की उत्पत्ति का कारण है। अरे... ऐसी बात, अब! ऐसी बातें हैं, बापू! समझ में आया?

इसके बिना तो राग और मैं आत्मा दोनों एक हूँ, यह महापाखण्ड, अज्ञान मिथ्यात्व, चौरासी के अवतार में भटकने का कारण है। आहाहा! परन्तु यह भगवान चैतन्यतत्त्व प्रभु, यह विकल्प अर्थात् राग से भिन्न जिसकी उत्पत्ति है — ऐसी अनुभूति की उत्पत्ति हो, आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, आत्मा के स्वरूप-आचरण अनुभूति... आहाहा! ए ई...! भभूतमलजी! रुपये धूल में तो कुछ सुनायी नहीं देता, वहाँ फिर... आहाहा!

श्रोता : धूल (पैसा) के बिना मन्दिर होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर, मन्दिर से हुआ है। क्या धूल से हुआ है? ए ई...! हमने तो उस समय वहाँ कहा था, बारह लाख का मन्दिर हुआ, बैंगलोर! इनने आठ लाख दिये थे, इनने आठ लाख, तो आठ लाख दिये तो क्या धर्म है? बिल्कुल नहीं, ए ई...!

श्रोता : उदारता के बिना आठ लाख दिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदारता किसे कहना ? यह उदारता ! रागरहित अनुभूति करे, वह उदारता है। कोई राग मन्द करे और वह भी फिर उसमें मेरी इज्जत बढ़ेगी, मैंने मन्दिर बनाया, मेरी प्रसिद्धि होगी तो यह (भाव) तो अकेला पाप है; पुण्य भी नहीं। आहाहा ! धर्म तो उसमें है ही नहीं। लाख-करोड़ मन्दिर बनाओ और करोड़ों-अरबों रुपये खर्च करो, धर्म नहीं है; वह तो राग की मन्दता हो तो पुण्य-शुभभाव होगा। आहाहा !

श्रोता : आपके प्रताप से यह सब.....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे यह ? रामजीभाई प्रमुख थे तो यह सब किया था ?

श्रोता : कहाँ से किया था रामजीभाई ने ? यह इसके कारण हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे इसे ? यह तो इसके कारण परमाणु की-पुद्गल की पर्याय जिस क्षेत्र में जिस प्रकार से होनी थी, वह हुई; करे कौन ? आहाहा ! कदाचित् भाव हो, शुभभाव हो तो वह पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा ! ऐई ! यह (परमागम मन्दिर) छब्बीस लाख का मकान है, परन्तु बाहर पूछते थे न, बाहर पूछते थे, वहाँ बाहर पूछते थे परन्तु इससे यह बन गया है — ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसी बातें सब पूरी दुनिया से बहुत फेरफार, भाई ! आहाहा !

अविचल अनुभूति को प्राप्त करते हैं,... जो पुरुष अन्दर भगवान आत्मा — आत्मतत्त्व परमात्मस्वरूप विराजमान है... आहाहा ! उसको शुभ-अशुभराग — पुण्य - पाप के भाव से भेदज्ञान करके भिन्न / पृथक् करके अपनी अनुभूति हो, आहाहा ! उसमें आनन्द का अनुभव हो, उसका नाम धर्म की पहली शुरुआत है। आहाहा ! उसकी पहली सीढ़ी, उसकी पहली सीढ़ी यह (है)। अरे ! ऐसा कठिन काम ! जगत को कहाँ पड़ी है, अरे ! भटकते-भटकते चार गति में भटक-भटककर मर गया है, अनन्त काल से !

श्रोता : आपका व्याख्यान सुना हो वह भटके — ऐसा कैसे बने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना तो भगवान के पास अनन्त बार सुना था। आहाहा !

यहाँ कहते हैं **अविचल अनुभूति को प्राप्त करते हैं,....** आहाहा ! ज्ञानानन्द प्रभु, ज्ञानरूपी स्वच्छ दर्पण, वह राग से भिन्न होकर अनुभव हो, इस अनुभव में **दर्पण की**

भाँति.... है ? **वे ही पुरुष दर्पण की भाँति....** आहाहा ! **अपने में प्रतिबिम्बित हुए अनन्त भावों के स्वभावों से....** अनन्त.... **निरन्तर विकाररहित होते हैं....** आहाहा ! क्या कहते हैं ? धर्मी जीव (ने) अपना स्वरूप, राग के विकल्प से भिन्न अनुभव किया, उस अनुभव में परज्ञेय जानने में आते हैं। परज्ञेय ! अरे राग आता है, वह भी जानने में आता है परन्तु जानने में होने से ज्ञान विकारी नहीं होता। आहाहा !

अब ऐसी बातें कहीं दुनिया के सम्प्रदाय में तो यह बात है ही नहीं ! सम्प्रदाय में तो विपरीतता - गड़बड़ी चली है। सब स्थानकवासी में कहते हैं सामायिक करो और प्रौषध करो और प्रतिक्रमण करो.... थे कहाँ अब ? अभी भान नहीं होता सम्यक्त्व का और कहाँ से सामायिक आयी ? श्वेताम्बर में पूजा करो, यात्रा करो, भक्ति करो, सिद्धचक्र की करो... मर जा न लाख करके, वह तो सब राग की क्रिया है। आहाहा !

श्रोता : वहाँ भी मोक्ष तो है, दया-दान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष है ? आत्मा का मोक्ष है ? आत्मा से भिन्न पड़ गया; राग के प्रेम में गिर गया। आहाहा !

जिसने इस शुभराग को उपादेय, अर्थात् आदरणीय माना है, उसने यह भगवान आत्मा हेय-तिरस्कार कर दिया है। उसने आत्मा का तिरस्कार कर दिया है। यह अपने उन्नीसवीं (गाथा में) आ गया है। पुण्य और पाप के भाव का आदर करनेवाला, इस पुण्य -पाप से आत्मा का तिरस्कार करनेवाला हो गया। पुण्य-पाप, आत्मा का तिरस्कार करते हैं। आहाहा ! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव, यह शुभराग, आत्मा का तिरस्कार करता है। बापू ! मार्ग अलग है भाई ! आहाहा ! आ गया है न अपने १९ वीं (गाथा में)। 'तिरस्कारणीय' यह शुभभाव भी आत्मा का तिरस्कार करता है। मैं (राग) ठीक हूँ तो भगवान त्रिलोकनाथ आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, वह ठीक नहीं। आहाहा ! धूल तो कहाँ रह गयी ? पैसे ! परन्तु अन्दर में शुभराग-पुण्य-यात्रा का, भक्ति का और भगवान के दर्शन का... आहाहा ! वह शुभराग है, धर्म नहीं। उस राग को जिसने आदरणीय माना, उसने भगवान आत्मा को हेय माना है। आहाहा ! ऐसी बात ! यहाँ तो यह कहा।

अपने में तो फिर आत्मा का भान हुआ। मैं तो विकल्प से और परसंयोग से तो

अत्यन्त भिन्न (हूँ) — ऐसा अनुभव होने से दर्पण की स्वच्छता में अनेक पर प्रतिबिम्बित दिखते हैं परन्तु दर्पण विकारी नहीं होता; वैसे अपने ज्ञानस्वरूप में ज्ञातापने का भान हुआ। समकिती को — धर्मी को, फिर राग आदि, शरीर आदि दिखायी देता है परन्तु वे ज्ञान करते हैं। उसका ज्ञान करने से ज्ञान में विकार नहीं होता है। अरे.. अरे... ! ऐसी बातें कहाँ की, परन्तु क्या है यह ? कहाँ का उपदेश यह ? भगवान का उपदेश ऐसा होगा ?

श्रोता : भगवान का उपदेश तो ऐसा ही होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे बापू! तुझे पता नहीं, भाई! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... भाई! आहाहा!

आत्मा का ज्ञान-आत्मज्ञान हुआ, राग से भिन्न होकर... आहाहा! तब से जगत की चीज उसको ज्ञाता में जानने में आती है परन्तु जानने में आती है तो भी ज्ञान विकारी नहीं होता। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा रहता है। अरेरे! अब ऐसी बात है। समझ में आया ?

निरन्तर विकाररहित होते हैं — ज्ञान में जो ज्ञेयों के आकार प्रतिभासित होते हैं, उनसे रागादि विकार को प्राप्त नहीं होते।

गाथा २०-२२

ननु कथमयमप्रतिबुद्धो लक्ष्येत–

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा।।२०।।

आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि।।२१।

एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो।।२२।।

अहमेतदेतदहं अहमेतस्यास्मि अस्ति ममैतत्।
अन्यद्यत्परद्रव्यं सचित्ताचित्तमिश्रं वा।।

आसीन्मम पूर्वमेतदेतस्याहमप्यासं पूर्वम्।
भविष्यति पुनर्ममैतदेतस्याहमपि भविष्यामि।।

एतत्त्वसद्भूतमात्मविकल्पं करोति सम्मूढः।
भूतार्थं जानन्न करोति तु तमसम्मूढः।।

यथाग्निरिन्धनमस्तीगन्धनमग्निरस्त्यग्निरिन्धनमस्तीन्धनस्याग्निरस्ति, अग्नेरिन्धनं पूर्वमासीदिन्धनस्याग्निः पूर्वमासीत्, अग्नेरिन्धनं पुनर्भविष्यतीन्धनस्याग्निः पुनर्भविष्यती –तीन्धन एवासद्भूताग्निविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धः कश्चिल्लक्ष्येत, तथाहमेतदस्म्येतदह –मस्ति ममैतदस्त्येतस्याहमस्मि, ममैतत्पूर्वमासीदेतस्याहं पूर्वमासं, ममैतत्पुनर्भविष्यत्ये –तस्याहं पुनर्भविष्यामीति परद्रव्य एवासद्भूतात्मविकल्पत्वेनाप्रतिबुद्धौ लक्ष्येतात्मा।

नाग्निरिंधनमस्ति नेन्धनमग्निरस्त्यग्निरग्निरस्तीन्धनमिन्धनमस्ति नाग्नेरिन्धनमस्ति नेन्धन –स्याग्निरस्त्यग्नेरस्त्यग्नेरग्निरस्तीन्धनस्येन्धनमस्ति, नाग्नेरिन्धनं पूर्वमासीन्नेन्धनस्याग्निः पूर्वमासीदग्नेरग्निः पूर्वमासीदिन्धनस्येन्धनं पूर्वमासीत्, नाग्नेरिन्धनं पुनर्भविष्यति नेन्धनस्याग्निः पुनर्भविष्यत्यग्नेरग्निः पुनर्भविष्यतीन्धनस्येन्धनं पुनर्भविष्यतीति कस्यचिदग्नावेव सद्भूताग्निविकल्पवन्नाहमेतदस्मि नैतदहमस्त्यहमहमस्म्येतदेतदस्ति, न ममैतदस्ति नैतस्याहमस्मि ममाहमस्म्येतस्यैतदस्ति, न ममैत्पूर्वमासीन्नैतस्याहं पूर्वमासं ममाहं पूर्वमासमेतस्यैतत्पूर्वमासीत्, न ममैतत्पुनर्भविष्यति नैतस्याहं पुनर्भविष्यामि ममाहं पुनर्भविष्याम्येतस्यैतत्पुनर्भविष्यतीति स्वद्रव्य एव सद्भूतात्म–विकल्पस्य प्रतिबुद्धलक्षणस्य भावात्।

अब शिष्य प्रश्न करता है कि अप्रतिबुद्ध को कैसे पहिचाना जा सकता है? उसका चिह्न बताइये; उसके उत्तररूप गाथा कहते हैं —

मैं ये अवरु ये मैं, मैं हूँ इनका अवरु ये हैं मेरे।
जो अन्य हैं पर द्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वे॥२०॥

मेरा ही यह था पूर्व में, मैं इसी का गतकाल में।
ये होयगा मेरा अवरु, मैं इसका हूँगा भावि में॥२१॥

अयथार्थ आत्मविकल्प ऐसा, मूढ़जीव हि आचरे।
भूतार्थ जाननहार ज्ञानी, ए विकल्प नहीं करे॥२२॥

गाथार्थ : [अन्यत् यत् परद्रव्यं] जो पुरुष अपने से अन्य जो परद्रव्य — [सचित्ताचित्तमिश्रं वा] सचित्त स्त्रीपुत्रादिक, अचित्त धनधान्यादिक अथवा मिश्र ग्रामनगरादिक हैं, उन्हें यह समझता है कि [अहं एतत्] मैं यह हूँ, [एतत् अहम्] यह द्रव्य मुझ-स्वरूप है, [अहम् एतस्य अस्मि] मैं इसका हूँ, [एतत् मम अस्ति] यह मेरा है, [एतत् मम पूर्वम् आसीत्] यह मेरा पहले था, [एतस्य अहम् अपि पूर्वम् आसम्] इसका मैं भी पहले था, [एतत् मम पुनः भविष्यति] यह मेरा भविष्य में होगा, [अहम् अपि एतस्य भविष्यामि] मैं भी इसका भविष्य में होऊँगा, [एतत् तु असद्भूतम्] ऐसा झूठा [आत्मविकल्पं] आत्मविकल्प [करोति] करता है वह [संमूढः] मूढ़ है,

मोही है, अज्ञानी है; [तु] और जो पुरुष [भूतार्थं] परमार्थ वस्तुस्वरूप को [जानन्] जानता हुआ [तम्] वैसा झूठा विकल्प [न करोति] नहीं करता वह [असंमूढः] मूढ़ नहीं, ज्ञानी है।

टीका : (दृष्टान्त से समझाते हैं :) जैसे कोई पुरुष ईंधन और अग्नि को मिला हुआ देखकर ऐसा झूठा विकल्प करे कि 'जो अग्नि है, सो ईंधन है और ईंधन है सो अग्नि है; अग्नि का ईंधन है, ईंधन की अग्नि है; अग्नि का ईंधन पहले था, ईंधन की अग्नि पहले थी; अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी' — ऐसा ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करता है वह झूठा है, उससे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहिचाना जाता है, इसी प्रकार कोई आत्मा परद्रव्य में ही असत्यार्थ आत्म-विकल्प करे कि 'मैं यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप है; यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ; मेरा यह पहले था, मैं इसका पहले था; मेरा यह भविष्य में होगा, मैं इसका भविष्य में होऊँगा' — ऐसे झूठे विकल्पों से अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) पहिचाना जाता है।

और, 'अग्नि है वह ईंधन नहीं है, ईंधन है वह अग्नि नहीं है, अग्नि है वह है अग्नि ही है, ईंधन है वह ईंधन ही है; अग्नि का ईंधन नहीं, ईंधन की अग्नि नहीं, अग्नि की अग्नि है, ईंधन का ईंधन है; अग्नि का ईंधन पहले नहीं था, ईंधन की अग्नि पहले नहीं थी, अग्नि की अग्नि पहले थी और ईंधन का ईंधन पहले था; अग्नि का ईंधन भविष्य में नहीं होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में नहीं होगी, अग्नि की अग्नि ही भविष्य में होगी, ईंधन का ईंधन ही भविष्य में होगा' — इस प्रकार जैसे किसी को अग्नि में ही सत्यार्थ अग्नि का विकल्प हो सो प्रतिबुद्ध का लक्षण है, इसी प्रकार 'मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है, मैं तो मैं ही हूँ, परद्रव्य है, वह परद्रव्य ही है; मेरा यह परद्रव्य नहीं, इस परद्रव्य का मैं नहीं, मेरा ही मैं हूँ, परद्रव्य का परद्रव्य है; यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था, यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था, मेरा मैं ही पहले था, परद्रव्य का परद्रव्य पहले था; यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा, इसका मैं भविष्य में नहीं होऊँगा, मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा, इस (परद्रव्य) का यह (परद्रव्य) भविष्य में होगा।' — ऐसा जो स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है, वही प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) का लक्षण है, इससे ज्ञानी पहिचाना जाता है।

भावार्थ : जो परद्रव्य में आत्मा का विकल्प करता है वह तो अज्ञानी है और जो अपने आत्मा को ही अपना मानता है, वह ज्ञानी है — यह अग्नि-ईंधन के दृष्टान्त से दृढ़ किया है।

गाथा - २० से २२ पर प्रवचन

अब शिष्य प्रश्न करता है कि अप्रतिबुद्ध को कैसे.... यह अज्ञानी है, मूढ़ है, अधर्मी है, उसे **कैसे पहिचाना जा सकता है ?** उसकी पहिचान क्या ? समझ में आया ? है ? शिष्य प्रश्न करता है — प्रभु ! यह अज्ञानी है, यह अप्रतिबुद्ध है, मूढ़ है, अधर्मी है... आहाहा ! कैसे पहिचाना जा सकता है ? **उसका चिह्न बताइये;....** उसका कोई लक्षण बतलाइये।

उसके उत्तररूप गाथा —

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा।।२०।।

आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि।।२१।

एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो।।२२।।

नीचे हरिगीत !

मैं ये अवरु ये मैं, मैं हूँ इनका अवरु ये हैं मेरे।
जो अन्य हैं पर द्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वे॥२०॥

मेरा ही यह था पूर्व में, मैं इसी का गतकाल में।
ये होयगा मेरा अवरु, मैं इसका हूँगा भावि में॥२१॥

अयथार्थ आत्मविकल्प ऐसा, मूढ़जीव हि आचरे।
भूतार्थ जाननहार ज्ञानी, ए विकल्प नहीं करे॥२२॥

टीका - है टीका ? **(दृष्टान्त से समझाते हैं :) जैसे कोई पुरुष ईंधन और अग्नि को मिला हुआ देखकर....** लकड़ी, लकड़ी, ईंधन और अग्नि मिलाकर देखता हुआ, मिला हुआ देखकर **ऐसा झूठा विकल्प करे कि 'जो अग्नि है, सो ईंधन है....** अग्नि वह लकड़ी है, झूठ बात है। **और ईंधन है सो अग्नि है;....** और लकड़ी है, वह अग्नि है। यह सामान्य बात पहले की है। **अग्नि का ईंधन है,....** अग्नि का ईंधन वर्तमान; **ईंधन की अग्नि है;....** यह वर्तमान; **अग्नि का ईंधन पहले था,....** इस अग्नि की लकड़ी, लकड़ी पहले थी — भूतकाल... **ईंधन की अग्नि पहले थी;'....** भूतकाल। **अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा,....** भविष्यकाल। आहाहा! **ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी' — ऐसा ईंधन में ही अग्नि का विकल्प करता है, वह झूठा है,....** मूढ़ है, आहा! लौकिक मूढ़ है। अब, आत्मा पर उतारते, (घटित करते) हैं।

ऐसे अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) कोई पहिचाना जाता है,.... अज्ञानी-लौकिक मूढ़ (पहिचाना जाता है)। **इसी प्रकार कोई आत्मा परद्रव्य में ही असत्यार्थ आत्म - विकल्प करे....** आहाहा! राग, पुण्य और पुण्य का फल यह पैसा, धूल आदि बाहर के — शरीर के स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, यह असत्यार्थ परद्रव्य में... आहाहा! असत्यार्थ, झूठा, आत्मविकल्प करता है कि यह मेरा है; स्त्री मेरी, कुटुम्ब मेरा, पुत्र मेरा, पैसा मेरा, मकान मेरा — मूढ़ है। आहाहा! तेरी चीज कहाँ से आयी ? वह तो परचीज है। आहाहा!

आत्मा, परद्रव्य में-परवस्तु में असत्य - झूठा आत्मभाव करता है कि **'मैं यह परद्रव्य हूँ,'...** मैं राग हूँ, मैं शरीर हूँ, यह स्त्री मेरी है, यह मेरा पुत्र है, मेरी कन्या है, मेरे पुत्र की बहू है, मूढ़ है। ऐसा आत्मविकल्प करता है। आहाहा!

श्रोता : तब तो सबको पागल के अस्पताल में रखना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल ही पागल। आहाहा! ऐसा भगवान तीन लोक के नाथ पुकारते हैं जगत को — अरे जीव! यह मूढ़ कैसे जानने में आता है ? कि ऐसे जानने में आता है कि **यह मेरा परद्रव्य है, इस परद्रव्य का मैं हूँ;....** आहाहा! यह वर्तमान। पहले सामान्य कहा था। क्या ? **'मैं यह परद्रव्य हूँ,....** मैं पुण्य हूँ, मैं राग, यह शरीर, कर्म, लक्ष्मी, लड़के-लड़कियाँ, देश मकान यह मैं हूँ और **यह परद्रव्य मुझस्वरूप है;'....** और राग, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार यह मेरा रूप है। आहाहा!

श्रोता : यह मेरा परिवार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी परिवार नहीं। आहाहा! बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) तो आ गया है, नहीं? वचनामृत में! आहाहा! अरे! ज्ञानी दया, दान और व्रत के विकल्प में आता है... अरे! हम परदेश में कहाँ आ गये? आहाहा! वचनामृत में आता है न? आहाहा! है यहाँ? पुस्तक यहाँ नहीं आये लगते हैं। हाँ, है, है, है न? १४९ पृष्ठ, कितना? ४०१ बोल। आहाहा! अरे! लो, यह विभावभाव हमारा देश नहीं। यह वचनामृत! यह पुण्य और पाप के — दया, दान, व्रत के भाव, वह मेरा देश नहीं, नाथ! आहाहा! ऐसी कठिन बात है। है? इस परदेश में हम कहाँ आ गये? आ पहुँचे? अरे...रे! हमारा देश तो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी भगवान, उसमें से शुभराग में आ गये, परदेश में कहाँ आ गये? आहाहा! ऐई! आया है न? तुम्हारे आया है। आहाहा! यहाँ हमारा कोई नहीं, आहाहा! हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता। धर्मी को तो राग में अच्छा नहीं लगता; राग, आता है। आहाहा! जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति, चारित्र, आनन्द, वीर्य, अनन्त गुण हमारा परिवार अन्दर बसता है, हमारा परिवार तो अन्दर में ज्ञान-आनन्द, वह परिवार है। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो धूल, तेरी नहीं, तेरी चीज ही नहीं परन्तु राग तेरा परिवार नहीं। आहाहा! कितनी चिन्ता हो गयी थी, उस लड़के को हो गया था वह? पता है न? टीबी का असर था? सुना था, आहाहा! यह संसार ऐसा बापू! अरेरे! हम तो आनन्दस्वरूपी आत्मा हैं न प्रभु! आहाहा! अरेरे! यह दया, दान और व्रत का विकल्प - राग उत्पन्न हो, वह हमारा देश नहीं, वह हमारा परिवार नहीं, आहाहा! देखो, धर्मी की दृष्टि! आहाहा! मूढ़ की दृष्टि तो यह शरीर और स्त्री, पुत्र और... आहाहा! यह हमारी घरवाली है... अरे! तेरा घर कहाँ से आया? घर तो यहाँ हुआ, तेरा घर तो आनन्द का नाथ - सागर, वह तेरा घर है। यह घरवाली कहाँ से आ गयी तेरी? आहाहा! हमारा स्वदेश! अब हम उस स्वरूपदेश की ओर जा रहे हैं। हमें शीघ्रता से अपने मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं। ४०१ (बोल)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं अज्ञानी... **'मैं यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप है;'....** आहाहा! यह सामान्य बात की। **यह मेरा परद्रव्य है,...** वर्तमान; यह राग मेरा, स्त्री मेरी

है, परिवार मेरा है, मकान मेरा है, **इस परद्रव्य का मैं हूँ;....** इस राग और स्त्री, कुटुम्ब का मैं पति हूँ, पत्नी का मैं पति हूँ, यह मूढ़ मानता है। आहाहा!

शिष्य ने प्रश्न किया कि इस अधर्मी का लक्षण क्या? चिह्न क्या? आहाहा! कठिन बातें बापू! अरेरे! जैनधर्म में जन्मे, उन्हें भी पता नहीं पड़ता तो अन्य में तो है क्या? आहाहा! आहाहा! यह भूतकाल की बात की है। **मेरा यह पहले था,...** यह भूतकाल। अरे! यह तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा हमारा था, हमारा! और हमारे भाई वे कोई पानी में डण्डा मारने से पानी कहीं अलग पड़ता है? पानी में लकड़ी मारे न ऐसे कि हमारे भाईयों ने हमारे कुटुम्ब कोई ऐसे हमारे अलग पड़ेंगे? अब सुन न मूर्ख! जगत से पृथक् सब (है) बापू! है?

श्रोता : पूरी दुनिया से पृथक्।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया, इस प्रकार पागल, पागल है। आहाहा!

मेरा यह भविष्य में होगा,.... आहाहा! अरे भाई! यह पैसा, इज्जत, कीर्ति भविष्य में मेरी मदद करेगी, यह लड़का, लड़का, यह स्त्री, पचास-पचपन वर्ष में विवाह... भाई! नंगे भूखे यह ढँके रखेगी... अरे मूढ! क्या है? आहाहा! पचपन वर्ष में विवाह। किसलिए परन्तु? कि स्त्री हो तो नंगे-भूखे-ढँके। कौन नंगा-भूखा! सुन न अब, मूर्ख! यह सब उसकी पोल खोलते हैं। आहाहा! खुल्ला शरीर हो तो लड़का-लड़की कैसे ढँक सके नग्न हो गया हो तो पत्नी ढँक दे। आहाहा! अरे! कौन प्रभु तेरी! आहाहा! ये हमारे थे और हम इनके थे। भविष्य में ऐसा होगा, **ऐसे झूठे....** झूठे **विकल्पों से अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) पहिचाना जाता है।....** लो! यह मूढ़ है — कैसे जानने में आता है? ऐसे झूठे - राग को करता है, वह अज्ञानी जानने में आता है। यह मूढ़ है, अधर्मी है, पापी है। आहाहा! बहुत कठिन काम!

'अग्नि है, वह ईंधन नहीं है,.... अब सुलटा दृष्टान्त। अग्नि है, वह लकड़ी नहीं है, लकड़ी और अग्नि भिन्न है। **ईंधन है वह अग्नि नहीं है,...** (यह) सामान्य बात की है। अब वर्तमान.... **अग्नि है वह अग्नि ही है, ईंधन है वह ईंधन ही है; अग्नि का ईंधन नहीं,...** आहाहा! **ईंधन की अग्नि नहीं, अग्नि की अग्नि है, ईंधन का ईंधन है;....** यह वर्तमान (की) बात की। **अग्नि का ईंधन पहले नहीं था,....** अग्नि की लकड़ी

पहले नहीं थी। लकड़ी तो लकड़ी की ही है और अग्नि तो अग्नि की है। आहाहा! अग्नि की लकड़ी पहले नहीं थी। **ईंधन की अग्नि पहले नहीं थी,....** लकड़ी की अग्नि पहले थी ही नहीं; अग्नि तो अग्नि की थी। **अग्नि की अग्नि पहले थी और ईंधन का ईंधन पहले था; अग्नि का ईंधन भविष्य में नहीं होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में नहीं होगी, अग्नि की अग्नि ही भविष्य में होगी, ईंधन का ईंधन ही भविष्य में होगा'....**

इस प्रकार जैसे किसी को अग्नि में ही सत्यार्थ अग्नि का विकल्प हो सो प्रतिबुद्ध.... है। वह लौकिक चतुर कहलाता है। अग्नि को अग्नि माने और अग्नि को लकड़ी न माने तथा लकड़ी को अग्नि न माने, वह लौकिक चतुर कहलाता है।

इसी प्रकार... आहाहा! **'मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ,....** आहाहा! जैसे अग्नि लकड़ी की नहीं है, वैसे मैं भगवान चैतन्यस्वरूप — मैं शरीर का, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश का नहीं हूँ। आहाहा! यह धर्मी की पहचान है। आहाहा! आहाहा! है? **'मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है,....** राग और पत्नी / स्त्री, कुटुम्ब, परिवार मेरा स्वरूप है ही नहीं, यह मेरा स्वरूप है ही नहीं। आहाहा! ऐसा सब भेदज्ञान करना। पूरे दिन निवृत्त कहाँ है, पाप के धन्धे...! आहाहा! एक पूरे दिन बाईस घण्टे यह खाया और यह पिया और यह कमाया और यह पुत्र और पाप के पोटले.... घण्टे भर सुनने को मिले तो वहाँ जाये तो इसे सब उल्टा मिलता है — यह दया पालो, व्रत करो, धर्म होगा, यह विपरीत मान्यताएँ (मिलती हैं)। आहाहा! इसका एक घण्टा बेचारे का लूट लिया। श्रीमद् कहते हैं कि कुगुरु इसका एक घण्टा लूट लेता है। भगवान की यात्रा करो, पालीताना-शत्रुंजय (पहाड़ पर) ऊपर चढ़ो, ९९ वें बार चढ़ो.... धूल में लाख बार चढ़ न अब!

श्रोता : पालीताना में मन्दिर बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर बनावे तो वह सब शुभराग है। समझ में आया? पन्द्रह लाख का मन्दिर बनता है न! अफ्रीका-नैरोबी (में)! यहाँ के साठ घर हैं, श्वेताम्बर थे, सब दिगम्बर हो गये हैं। साठ घर हैं, आठ तो करोड़पति हैं। यह दूसरा कोई पन्द्रह लाख-बीस लाख, पच्चीस लाख, चालीस लाख, पचास लाख सब पैसेवाले हैं। अफ्रीका में मन्दिर नहीं था, पहले तो था नहीं। आहाहा! अभी इस महीने में पहले पन्द्रह लाख के

मन्दिर का मुहूर्त किया है। ये लोग विनती करने आयेंगे। गृहस्थ लोग हैं। सब श्वेताम्बर थे, साठ घर, सब दिगम्बर हो गये हैं। क्योंकि वहाँ अफ्रीका में तीस वर्ष वाँचन चलता है, तीस वर्ष से स्वाध्याय (चलती है)। बड़ा स्वाध्याय मन्दिर ढाई लाख का है, स्वाध्याय चलता है परन्तु श्वेताम्बर थे, श्वेताम्बर थे वे सब। पन्द्रह लाख के मन्दिर का मुहूर्त किया है। ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारस-भीम ग्यारस, अफ्रीका-नैरोबी.... विनती करने आयेंगे परन्तु अब तो भाई! शरीर को ८९ वर्ष हुए। कोमल शरीर, खुराक बन्द,... विनती करते हैं और उनका आने का भाव है। भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि किसका पैसा और किसका मन्दिर? आहाहा! मेरा यह था और मेरा यह रहेगा, भविष्य में भी मेरा रहेगा — मूढ़ है। आहाहा! है? '**मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ,....** धर्मी तो ऐसा मानता है। देखो! मैं तो यह राग और शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश मेरा नहीं। **यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है, मैं तो मैं ही हूँ,....** मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु मैं हूँ। यह धर्मी का लक्षण है। आहाहा! आहाहा! यह तो यात्रा की तो धर्म किया... पालीताना की यात्रा पूर्णिमा को की... धूल भी धर्म नहीं है। सुन न! उसमें राग मन्द किया हो तो पुण्य होगा। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

परद्रव्य का परद्रव्य है; यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था,.... यह राग, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, महल पहले से ही मेरे नहीं थे। आहाहा! **यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था, इस परद्रव्य का मैं पहले नहीं था,....** ये मेरे नहीं हैं, मैं उनका नहीं हूँ, पहले से ही ऐसा हूँ। आहाहा! यह धर्मी! आहाहा! इसका नाम सम्यग्दृष्टि जीव! अभी धर्म की शुरुआतवाला, हों! आहाहा! **मेरा मैं ही पहले था,...** मैं तो अनादि से आनन्दस्वरूप, मैं पहले से अपना था। **परद्रव्य का परद्रव्य पहले था; यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा,....** आहाहा! यह लड़का, स्त्री, पुत्र वर्तमान में मेरे नहीं; भूतकाल में मेरे नहीं थे; भविष्य में मेरे नहीं रहेंगे। आहाहा! (भविष्य में मेरा) नहीं होगा। **इसका मैं भविष्य में नहीं होऊँगा, मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा,....** आहाहा! मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप, मुझमें भविष्य में मैं ही रहूँगा; मैं रागरूप और पररूप कभी नहीं होऊँगा। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि का लक्षण! आहाहा! इसे तो (अज्ञानी को तो) भान भी नहीं होता कि यहाँ यह

क्या है ? (क्योंकि) बेचारे को सुनने में नहीं मिला। आहाहा! **मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा, इस (परद्रव्य) का यह (परद्रव्य) भविष्य में होगा।'....** यह तो परद्रव्य है, परद्रव्य उसमें रहेगा। आहाहा!

ऐसा जो स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है,.... भगवान ज्ञायकस्वरूप प्रभु, अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा, उसमें जो आत्मा निर्णय करता है, वह स्वद्रव्य में सत्यार्थ आत्मा का निर्णय करता है, वही ज्ञानी है, वह धर्मी है, वह धर्मी का लक्षण है। आहाहा! बहुत कठिन काम लिया! दया, दान का विकल्प भी मेरा नहीं था, मेरे में है ही नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार मुझमें है नहीं; मैं उनमें नहीं हूँ, भूतकाल में नहीं था, भविष्य में नहीं होऊँगा। आहाहा!

यहाँ तो कुछ शरीर को ठीक हो तो भी लड़के को कहता है — यह मर जाये तब जाय न स्नान करने को... स्नान-स्नान। जा न तू, यह मैं ही हूँ न, जा न तू! मूरख! तू जा, तू जा। स्नान में साथ जा, श्मशान में वहाँ साथ जा ? तू है वह मैं ही हूँ न ? परन्तु कब तू है वह मैं... आहाहा! अज्ञानी का भ्रम, चार गति में भटकने का यह सब लक्षण है। आहाहा!

इसमें तो जबावदारी बहुत है। आहाहा! (स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प) यह प्रतिबुद्ध ज्ञानी का लक्षण है। आहाहा! इसमें ज्ञानी पहचाना जाता है। अज्ञानी की पहचान रागादि परद्रव्य को मेरा मानना और वह मेरा स्वरूप है — ऐसा मानना; पहले मेरा था, मैं उसका था; भविष्य में मेरा रहेगा, मैं भी उसका रहूँगा (— ऐसा मानना वह) उसका — अज्ञानी का लक्षण है।

धर्मी का — सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, छह खण्ड के राज्य में सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती थे — शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ.... परन्तु एक राग का अंश और छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें हजार स्त्रियाँ मेरी नहीं हैं, वे तो पर हैं। आहाहा! समझ में आया ? मैं उनमें नहीं, वे मुझमें नहीं, और मेरे कारण से वे आये नहीं तथा मैं उनका स्वामी हूँ — ऐसा है नहीं। सौधर्म देवलोक का इन्द्र है, बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव (उनका स्वामी) सौधर्म देवलोक समकिती है, ज्ञानी है, करोड़ों अप्सरायें हैं परन्तु अन्तर में एक रोम में भी यह स्त्री मेरी नहीं, मैं उसका नहीं। आहाहा! समझ में

आया ? यह इन्द्राणी मेरी नहीं, मेरे इन्द्राणी नहीं, मैं इन्द्राणी में नहीं। आहाहा!

इस प्रकार पर से भेदज्ञान — वर्तमान, भूत और भविष्य में तीनों काल में — ऐसा भेदज्ञान वर्तता है। आहाहा! अज्ञानी को तीनों काल में मेरा (सब) — ऐसा वर्तता है। आहाहा! लड़के को समझाना, शिक्षा देना, जवान लड़की आवे-बीस-पच्चीस वर्ष की जवान, दो-दो वर्ष की उम्र में एक तेईस-पच्चीस और सत्ताईस और उनतीस, उन्हें ठिकाने लगाना या नहीं, अब यहाँ ? कौन है परन्तु तेरे, वे थी ही नहीं न ? आहाहा!

पैसा बहुत हो तो यह काम कर सके नहीं स्वयं; फिर एक गृहस्थ को दुकान के लिए ढूँढ़ता है कि देखो! पच्चीस लाख तुझे दूँगा, एक प्रतिशत ब्याज लूँगा और महीने में हिसाब जाँच करने आऊँगा और आधा हिस्सा आमदनी में... इतनी शर्तें ये सेठिया लोग करते हैं।

श्रोता : आपको कैसे पता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी दुनिया, पूरी दुनिया का पता है। आहाहा!

अरे प्रभु! तू यह क्या करता है ? भगवान तो इसे मूढ़ कहते हैं, यह जैन ही नहीं है। आहाहा! जैन तो उसे कहते हैं... आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन।' भगवान वीतरागी मूर्ति प्रभु आत्मा विराजमान है, भाई! तुझे नहीं जँचता, भाई! आहाहा! यह आत्मा मैं हूँ और राग नहीं हूँ; इस (प्रकार) जिसने राग को जीत लिया, जिसने राग को जीत लिया (वह ज्ञानी है) और जिसे राग ने जीत लिया, वह अज्ञानी है। जिसने राग को जीत लिया, वह जैन। आहाहा! समझ में आया ? जगत से अलग बात है, बापू!

हम दुनिया को बहुत जानते हैं और यहाँ तो ८९ वर्ष हुए और ७२ वर्ष से तो यह शास्त्र अभ्यास है। मैं तो दुकान में भी — पालेज में शास्त्र-अभ्यास करता था। सब देखा है न, अनेक देखे हैं। वेदान्ती देखे हैं, वेदान्ती के एक बड़े गुरु थे, वह हमारा ग्राहक था, वहाँ सब पैर पड़ते और हमारा ग्राहक आसामी था। क्या कहते हैं उसे ? ग्राहक था। क्या कहलाता है ? धीरता धार धीर करते आते हों। उगाही करने जाता मैं; वहाँ उनका मेहराजसी गाँव था, वहाँ हमारी उगाही बहुत थी परन्तु यह सब १९-२०-२१ वर्ष की उम्र में। सब भ्रमणाएँ की। आहाहा!

अरे प्रभु! तू कौन है, कहाँ है ? आहाहा! तू तो आत्मा है न नाथ! तुम किसमें हो ? तुम तो ज्ञान में हो, आनन्द में, शान्ति में हो न तुम तो! तुम राग और पर में तो हो ही नहीं न ? आहाहा! और राग तथा पर तुझमें कभी आया ही नहीं। आहाहा! ऐसे आत्मा के अन्तर में राग से भिन्न होकर भान / अनुभूति होना, उसका नाम भगवान सम्यग्दृष्टि-धर्म की पहली शुरुआतवाला, अभी तो पहली शुरुआत, हों! आहाहा! ऐसा मार्ग! अरेरे! दुनिया चली जाती है — लुट जाती है, बेचारे कहाँ जायेंगे ? आहाहा! बहुतों को तो इस आत्मा का जिन्हें श्रवण नहीं है, पुण्य भी नहीं और अकेले पाप किये हैं; धर्म तो है नहीं। राग से भिन्न सम्यग्दर्शन तो है नहीं... आहाहा! और २२-२३ घण्टे पाप... एकाध घण्टे कोई सुनने जाये शुभभाव हो, शुभ; यात्रा आदि शुभभाव परन्तु ऐरण की चोरी और सुई का दान.... आहाहा! ऐरन समझते हो न ? सोनी, सोनी की होती है; सोना गढ़ने की, आहाहा! क्या कहते हैं ? ऐरन। ऐरन की चोरी और सुई का दान.... धर्म तो है नहीं आत्मज्ञान (तो है नहीं) परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं है। एकाध घण्टे सुनने जाये उससे शुभभाव हो, उसमें बाईस घण्टे तो अकेले पाप — स्त्री, पुत्र और धन्धा.... मार डाला! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं — प्रभु! एक क्षण भी पर की चीज अपनी है और मैं उसका हूँ, — यह माननेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि, अधर्मी है और एक क्षण में जैसे भिन्न पड़कर अपना भान हुआ (कि) मैं तो ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ, मुझमें यह चीज जानने में आती है, तथापि मुझे विकार नहीं होता; मैं तो जाननेवाला हूँ। आहाहा! उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी... आहाहा! कितनी जवाबदारी! **वही प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) का लक्षण है, इससे ज्ञानी पहिचाना जाता है।**

भावार्थ : जो परद्रव्य में आत्मा का विकल्प,... राग-एकता... करता है वह तो अज्ञानी है और जो अपने आत्मा को ही अपना मानता है, वह ज्ञानी है — यह अग्नि-ईंधन के दृष्टान्त से दृढ़ किया है। आहाहा! बात तो बहुत सादी थी भाषा... अग्नि लकड़ी की होती नहीं, लकड़ी अग्नि की होती नहीं। परद्रव्य अपना होता नहीं, अपना द्रव्य परद्रव्य में होता नहीं। अग्नि शब्द से आत्मा आनन्दकन्द प्रभु और राग तथा यह सब (परद्रव्य) लकड़ी है। पैसा-बैसा इसका (आत्मा का) होता नहीं और लकड़ी अपनी होती नहीं कभी। आहाहा! (विशेष कहेंगे) (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)